हेमन्त कुमार सिंगी

स्वाध्याय का महत्व

जैन धर्म में तप को अत्यधिक महत्व दिया गया है, यदि हम यह कहें कि जैन धर्म तप प्रधान धर्म हैं तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। जैन साहित्य में तप पर विस्तार से विवेचन किया गया है। वहां तप को मूल रूप से दो भागों में बांटा गया है– (१) बाह्य तप और (२) आभ्यंतर तप। पुन: इन दोनों को छ:-छ: भागों में बांटा गया है। स्वाध्याय भी तप है और अभ्यंतर तप के अन्तर्गत आता है।

स्वाध्याय का अर्थ : वाचस्पत्यम् में स्वाध्याय शब्द की व्याख्या दो प्रकार से की है– १. स्व+अधि+ईण् जिसका तात्पर्य है कि स्व का अध्ययन करना। दूसरों शब्दों में स्वाध्याय आत्मानुभूति है, अपने अंदर झांककर अपने आपको देखना है। वह स्वयं अपना अध्ययन है। मेरी दृष्टि में अपने विचारों, वासनाओं व अनुभूतियों को जानने व समझने का प्रयत्न ही स्वाध्याय है। वस्तुत: वह अपनी आत्मा का अध्ययन ही है। आत्मा के दर्पण में अपने को देखना है। स्वाध्याय शब्द की दूसरी व्याख्या सू+आ+अधि+ईड़ इस रूप में भी की गई है। इस दृष्टि से स्वाध्याय की परिभाषा होती है ''शोभनोऽध्याय: स्वाध्याय:'' अर्थात् सत्-साहित्य का अध्ययन करना ही स्वाध्याय है। स्वाध्याय की इन दोनों परिभाषाओं के आधार पर एक बात जो उभर कर सामने आती है वह यह कि सभी प्रकार का पठन-पाठन स्वाध्याय नहीं है। आत्म विशुद्धि के लिये किया गया, अपनी स्वकीय वृत्तियों, भावनाओं व वासनाओं अथवा विचारों का अध्ययन या निरीक्षण तथा ऐसे सद्ग्रंथों का पठन-पाठन जो हमारी चैतसिक विकृतियों को समझने और उन्हें दूर करने में सहायक हो, वे ही स्वाध्याय के अन्तर्गत आते हैं।

स्वयं के अन्तर्मन यानि स्वयं का स्वयं द्वारा अध्ययन ही स्वाध्याय कहलाता है। आत्मचिंतन, आत्मसमीक्षा भी स्वाध्याय का ही रूप है। सद्शास्त्रों का मर्यादापूर्वक अध्ययन करना, विधि सहित श्रेष्ठ पुस्तकों का अध्ययन करना ही स्वाध्याय है।

आवश्यक सूत्र में स्वाध्याय का अर्थ बतलाते हुए लिखा है ''अध्ययने अध्याय: शोभनो अध्याय: स्वाध्याय:'' सु– अर्थात श्रेष्ठ अध्ययन का नाम स्वाध्याय है। कहने का तात्पर्य है कि आत्म कल्याणकारी पठन-पाठन रूप श्रेष्ठ अध्ययन का नाम स्वाध्याय है। दूसरों अर्थों में जिसके पठन-पाठन से आत्मा की शुद्धि होती है, वही स्वाध्याय है। ''स्वेन स्वस्य अध्ययनं स्वाध्याय:'' अर्थात् स्वयं के द्वारा स्वयं का अध्ययन ही स्वाध्याय है।

सिद्धि का सफर तय करने के लिए स्वाध्याय स्यंदन है। इसमें बैठने वाला व्यक्ति कर्मशत्रुओं को आसानी से जीत सकता है। स्वाध्याय एक चिन्मय चिराग है, जो भवकानन में भटकने वाले व्यक्ति की राह को रोशन करता है। स्वाध्याय वह चाबी है जो सिद्धत्व के बंद दरवाजे को खोलती है। स्वाध्याय एक अनुपम सारथी है, जो सूर्यरथ के सारथि 'अरूण' की भांति मिथ्यात्व रूपी अज्ञतिमिर का हरण करती है।

गणधर गौतम ने भगवान महावीर से पूछा– ''सज्झाइंण भंते, जीवे कि जणयई-भंते!'' स्वाध्याय की निष्पति क्या है। श्रमण भगवान महावीर ने फरमाया 'सज्झाइणं नाणावरणिज्जं कम्मं खेवई' स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्म क्षीण होता है। इसके अतिरिक्त सद्संस्कारों की प्राप्ति, ज्ञान व विनय की आराधना, मोक्ष की उपलब्धि, कुशल कर्मों का अर्जन, कांक्षा मोहनीय कर्म का विच्छेद, ये सारे लाभ प्राप्त होते हैं।

स्वाध्याय के प्रकार– भगवान महावीर ने स्वाध्याय के पांच प्रकार बतलाये हैं-

१. वाचना २. पृच्छना ३. परिवर्तना ४. अनुप्रेक्षा ५. धर्मकथा

- ❒ वाचना – सदगुरू की नेश्राय में अध्ययन करना।
- ❒ पृच्छना – सूत्र और उसके अर्थ पर चिन्तन मनन। अज्ञात विषय की जानकारी या ज्ञात विषय की विशेष जानकारी के लिए प्रश्न पूछना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- परिवर्तना – परिचित विषय को स्थिर रखने के लिए बार-बार दोहराना।
- अनुप्रेक्षा – जिस सूत्र की वाचना ग्रहण की है उस सूत्र पर तात्विक दृष्टि से चिन्तन करना।
- धर्मकथा – स्थिरीकृत और चिंतित विषय का उपदेश करना।

यहां यह भी स्मरण रखना है कि स्वाध्याय के क्षेत्रों में इन पांचों अवस्था का एक क्रम है, इनमें प्रथम स्थान वाचना है। अध्ययन किये गये विषय के स्पष्ट बोध के लिए प्रश्नोत्तर के माध्यम से शंका निवारण करना इसका क्रम दूसरा है। क्योंकि जब तक अध्ययन नहीं होगा, तब तक शंका आदि नहीं होगी। अध्ययन किये गये विषय के स्थिरीकरण के लिए उसका पारायण आवश्यक है। इससे एक ओर स्मृति सुदृढ़ होती है तो दूसरी ओर क्रमशः अर्थ बोध में स्पष्टता का विकास होता है। इसके पश्चात् अनुप्रेक्षा या चिंतन का क्रम आता है। चिंतन के माध्यम से व्यक्ति पठित विषय को न केवल स्थिर करता है अपितु वह अर्थ बोध की गहराई में जाकर स्वतः की अनुभूति के स्तर पर उसे समझने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार चिंतन एवं मनन के द्वारा जब विषय स्पष्ट हो जाता है तब व्यक्ति को धर्मोपदेश या अध्ययन का अधिकार मिलता है।

स्वाध्याय के नियम : किसी भी कार्य को सही रूप से सम्पादित करने की प्रक्रिया होती है। अगर वह कार्य उसी प्रक्रिया के अन्तर्गत किया जाये तो वह हमें अधिक फल देने वाला होगा ठीक इसी प्रकार स्वाध्याय के भी कुछ नियम हैं। अगर इन नियमों को अपनाकर स्वाध्याय किया जाये तो वह निश्चित ही परम सिद्धि की प्राप्ति में सहायक है।

निरन्तरता : स्वाध्याय प्रतिदिन नियमानुसार किया जाना चाहिये स्वाध्याय में किसी प्रकार का निक्षेप नहीं होना चाहिये। निरन्तरता से हमारी स्मरण शक्ति प्रखर बनती है।

एकाग्रता : हमारा मन संसार के चक्रव्यूह में इधर-उधर भटकता रहता है जब तक हमारा मन चंचल बना रहेगा तब तक स्वाध्याय के परम आनंद की अनुभूति प्राप्त नहीं हो सकती अतः आवश्यक है कि स्वाध्याय एकाग्रतापूर्वक किया जाये।

सद्साहित्य का चयन : वर्तमान में बाजार में ऐसी पुस्तकें बहुतायत से उपलब्ध हो रही हैं जो मानसिक विकारों को जन्म देने वाली है अतएव हमें स्व-विवेक से सद्साहित्य का चुनाव करना चाहिये ताकि स्वाध्याय उचित ढंग से किया जा सके।

स्वाध्याय का स्थान : स्वाध्याय के लिए स्थान कैसा हो? यह प्रश्न स्वाभाविक है। स्वाध्याय के लिए स्थान कोलाहल रहित, स्वच्छ एवं एकान्त होना चाहिये।

स्वाध्याय का महत्व : भगवान महावीर ने गौतम की जिज्ञासा को शांत करते हुए स्वाध्याय के विषय में फरमाया कि स्वाध्याय से श्रुतज्ञान का लाभ प्राप्त होता है, मन की चंचलता समाप्त होती है और आत्मा आत्मभाव में स्थिर होती है। जैन साधना का लक्ष्य समभाव की उपलब्धि है और समभाव की उपलब्धि हेतु स्वाध्याय एवं सत्-साहित्य का अध्ययन आवश्यक है– सत्-साहित्य का स्वाध्याय मनुष्य का ऐसा मित्र है जो अनुकूल एवं प्रतिकूल दोनों परिस्थितियों में उसका साथ निभाता है और उसका मार्गदर्शन कर उसके मानसिक तनावों को समाप्त करता है। ऐसे साहित्य के स्वाध्याय से व्यक्ति को हमेशा आत्मसंतोष और आध्यात्मिक आनंद की अनुभूति होती है। मानसिक तनावों से मुक्ति मिलती है। यह मानसिक शांति का अमोघ उपाय है।

सत्-साहित्य के स्वाध्याय का महत्त्व अति प्राचीन काल से ही स्वीकृत रहा है। ओपनिषदिक् चिंतन में जब शिष्य अपनी शिक्षा पूर्ण करके गुरु के आश्रम से बिदाई मांगता है तो उसे दी जानेवाली अंतिम शिक्षाओं में एक शिक्षा होती थी–''स्वाध्यायान् मा प्रमदः'' अर्थात् स्वाध्याय में प्रमाद मत करना। स्वाध्याय एक ऐसी वस्तु है जो गुरु की अनुपस्थिति में गुरु का कार्य करती है। स्वाध्याय से हम कोई न कोई मार्गदर्शन प्राप्त कर ही लेते हैं। महात्मा गाँधी कहा करते थे कि जब भी मैं किसी कठिनाई में होता हूँ, मेरे सामने कोई जटिल समस्या होती है, जिसका निदान मुझे स्पष्ट रूप से प्राप्त नहीं होता है तो मैं स्वाध्याय की गोद में चला जाता हूँ जहाँ पर मुझे कोई न कोई समाधान अवश्य मिल जाता है।

जैन परम्परा में जिसे मुक्ति कहा गया है वह वस्तुतः राग-द्वेष से मुक्ति है। मानसिक तनावों से मुक्ति है और ऐसी मुक्ति के लिये पूर्व कर्म संस्कारों का निर्जरण या क्षय आवश्यक माना गया है और इसके लिये स्वाध्याय को आवश्यक बताया गया है। उत्तराध्यन-सूत्र में स्वाध्याय को आंतरिक तप का एक प्रकार बताते हुए उसके पांचों अंगों की विस्तार से चर्चा की गई है। बृहदकल्पभाष्य में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ''नवि अत्थि न वि अ होही, सझाय समं तपो कम्म'' अर्थात् स्वाध्याय के समान दूसरा तप का अतीत में कोई था न वर्तमान में कोई है और न भविष्य में कोई होगा। इस प्रकार जैन परम्परा में स्वाध्याय को आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में विशेष महत्व दिया गया है। उत्तराध्यन-सूत्र में कहा गया है कि स्वाध्याय से ज्ञान का प्रकाश होता है। जिससे समस्त दुःखों का क्षय हो जाता है। वस्तुतः स्वाध्याय ज्ञान प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण उपाय है, कहा भी है–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए
अन्नाण-मोहस्स विवज्जाणाए।
रागस्स दोसस्स य संखएणं
एगन्तसोक्खं समुवेई मोक्खं।।
तस्सेस मग्गो गुरू विद्वसेवा
विवज्जणा बालजणस्स दूरा।
सज्झाय-एगन्तनिसेवणा य
सुत्तऽत्थसंचिन्तणया धिई य।

अर्थात् संपूर्ण ज्ञान के प्रकाशन से अज्ञान और मोह के परिहार से राग-द्वेष के पूर्ण क्षय से जीव एकांत सुख रूप मोक्ष को प्राप्त करता है। गुरुजनों की, वृद्धों की सेवा करना, अज्ञानी लोगों के सम्पर्क से दूर रहना, सूत्र और अर्थ का चिंतन करना, स्वाध्याय करना और धैर्य रखना यह दु:खों से मुक्ति का उपाय है।

उत्तराध्ययन-सूत्र में कहा गया है कि ''सझाय वा निउतेणमं सव्वदुक्खविमोक्खणे'' अर्थात् स्वाध्याय करते रहने से समस्त दु:खों से मुक्ति मिलती है। स्वाध्याय के विषय में कहा गया है कि जैसे अंधे व्यक्ति के लिये करोड़ो दीपकों का प्रकाश भी व्यर्थ है किन्तु आंख वाले व्यक्ति के लिए एक भी दीपक का प्रकाश सार्थक होता है। इसी प्रकार जिसके अन्तर चक्षु खुल गये हो, जिसकी अन्तर यात्रा प्रारंभ हो गई है, ऐसे अध्यात्मिक साधक के लिये स्वल्प अध्ययन भी लाभप्रद होता है अन्यथा आत्म-विस्तृत व्यक्ति के लिये करोड़ों पदों का ज्ञान भी निरर्थक होता है। स्वाध्याय में अंतर चक्षु का खुलना-आत्मदृष्टा बनाना, स्वयं में झांकना पहली शर्त है। शास्त्र का पढ़ना या अध्ययन करना उसका दूसरा चरण है।

उत्तराध्ययन-सूत्र में यह प्रश्न उपस्थित किया गया कि स्वाध्याय से जीव को क्या लाभ है। इसके उत्तर में कहा गया कि स्वाध्याय से ज्ञानावरण कर्म का क्षय होता है। दूसरें शब्दों में आत्मा मिथ्या ज्ञान का आचरण दूर कर सम्यक ज्ञान का अर्जन करता है। इसी प्रकार स्थानांग-सूत्र में शास्त्रध्ययन के लाभ बताये गये हैं। इसमें कहा गया है कि सूत्र की वाचना के पांच लाभ है। १. वाचना से श्रुत का संग्रह होता है २. शास्त्राध्ययन अध्यापन की प्रवृति से शिष्य का हित होता है क्योंकि वह उसके ज्ञान प्राप्ति का महत्वपूर्ण साधन है। ३. शास्त्राध्ययन अध्यापन की प्रवृत्ति बनी रहने से ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय होता है। ४. अध्ययन की प्रवृत्ति के जीवित रहने से उसके विस्मृत होने की संभावना नहीं रहती। ५. जब श्रुत स्थिर रहता है तो उसकी अविछिन्न परम्परा चलती रहती है।

स्वाध्याय से श्रुत का संग्रह होता है, ज्ञान के प्रतिबंधक कर्मों की निर्जरा होती है। बुद्धि निर्मल होती है। संशय की निवृत्ति होती है, तप त्याग की वृद्धि होती है एवं अतिचारों की शुद्धि होती है। सद्गुणों के संरक्षक, संवर्धन और संशोधन के लिए स्वाध्याय आवश्यक है। अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर मिलने का अर्थ है शंका रहित होना, यही स्वाध्याय है। स्वाध्याय की परम्परा से संदेह का निवारण होता है। ज्ञान में विशेष से विशेषतर एवं विशेषतम उपलब्धि का अनुभव होता है।

स्वाध्याय का जैन परम्परा में कितना महत्व रहा है वह इसी बात से प्रकट होता है कि मुनि दिन के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करें, दूसरे प्रहर में ध्यान करें, तीसरे पहर में भिक्षाचर्या एवं दैहिक आवश्यकताओं की वृत्ति का कार्य करें। पुन: चतुर्थ प्रहर में स्वाध्याय करें। इसी प्रकार रात्रि प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तीसरे में निद्रा व चौथे में पुन: स्वाध्याय का निर्देश है। इस प्रकार मुनि प्रतिदिन चार प्रहर अर्थात् १२ घंटे स्वाध्याय में रत रहें। दूसरे शब्दों में साधक-जीवन का आधा भाग स्वाध्याय के लिये नियत है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जैन परम्परा में स्वाध्याय की महत्ता प्राचीन काल से ही सुस्थापित रही है क्योंकि यही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति के अज्ञान का निवारण संभव है।

सत्-साहित्य के पठन के रूप में स्वाध्याय की क्या उपयोगिता है? यह सुस्पष्ट है कि वस्तुत: सत् साहित्य का अध्ययन व्यक्ति के जीवन की दृष्टि को ही बदल देता है। ऐसे अनेक लोग हैं जिनकी सत्-साहित्य के अध्ययन से जीवन की दिशा ही बदल गई। स्वाध्याय एक ऐसा माध्यम है जो एकांत के क्षणों में हमें अकेलापन महसूस नहीं होने देता और एक सच्चे मित्र की भांति सदैव साथ रहता है और मार्गदर्शन करता है।

मन में सदैव मूल्यांकन चलता रहता है, स्वाध्याय के द्वारा सदैव हमको इसका परीक्षण करते रहना चाहिये। कुछ लिखते रहने की प्रवृत्ति भी स्वाध्याय से प्राप्त होती है जो सदैव ताजगी प्रदान करती है। वैयक्तिक भिन्नता से उत्पन्न समस्या का समाधान भी स्वाध्याय ही है। स्वाध्याय से कर्म क्षीण होते हैं, ज्ञान देने की क्षमता जागृत होती है। स्वाध्याय से सूत्र, अर्थ, सूत्रार्थ से संबंधित मिथ्या धारणाओं का अन्त होता है। स्मरण शक्ति तीव्र होती है। यथार्थत: स्वाध्याय वह योग है जिसमें ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं भक्तियोग का समन्वय है एवं जिससे परमात्म-पद की प्राप्ति होती है।

–गोलछा चौक, बीकानेर (राज०)

■

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org